मातृभूमि

(अथर्ववेद के पृथिवीसूक्त का पद्यानुवाद)

हरिवल्लभ 'हरि'

अर्चना प्रकाशन, अजमेर

मातृभूमि

(अथर्ववेद के पृथिवीसूक्त का पद्यानुवाद)

000

रचनाकार
हरिवल्लभ 'हरि'

भूमिका
डॉ॰ फ़तहसिंह

000

वितरक
अर्चना प्रकाशन, अजमेर

मातृभूमि
(पृथिवीसूक्त का पद्यानुवाद)
रचनाकार—-हरिवल्लभ 'हरि'
प्रकाशन वर्ष—१९८०
मूल्य—तीन रुपये मात्र
प्रकाशक—लेखक स्वयं
मुद्रक—अर्चना प्रकाशन, अजमेर

भूमिका

श्री हरिवल्लभ द्वारा अनूदित पृथिवीसूक्त की भूमिका लिखते हुये मुझे बहुत हर्ष हो रहा है। श्री हरिवल्लभ जी एक रससिद्ध कवि और वेदप्रेमी हैं। उन्होंने यह अनुवाद "स्वान्त:सुखाय' ही किया था और कभी भी प्रकाशित करने की बात उनके मन में नहीं थी। इसलिए इस अनुवाद का विशेष महत्त्व है। इतना सहज-सुन्दर पद्यानुवाद अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

पृथिवीसूक्त में मातृभूमि की वन्दना में जो कुछ कहा गया वह अथर्ववेद का राष्ट्रधर्म है। यों तो प्रतीकवाद और अर्थवाद वैदिक सूक्तों की सर्वत्र विशेष विशेषता है; परन्तु प्रस्तुत सूक्त इस शैली का नमूना है। वैदिक प्रतीकों और परिभाषाओं का शाब्दिक अनुवाद तो संभव ही नहीं है। यह कठिनाई तब और भी बढ़ जाती है जब आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक अर्थ में वही अर्थ प्रयुक्त होता हो।

फिर भी इन सीमाओं के होते हुए भी श्री हरिवल्लभ ने राष्ट्र-

भूमि की वंदना की दृष्टि से बहुत ही सुबोध, सरस तथा सहजशैली में भाषान्तर प्रस्तुत किया है। जिसके लिए कवि महोदय वधाई के पात्र हैं।

यह राष्ट्रवन्दना उन छह तत्त्वों के निर्देश से प्रारम्भ होती है जो राष्ट्रभूमि को धारण करते हैं। इनके नाम हैं वृहत् सत्यम्, उग्रं ऋतम्, तप, दीक्षा, ब्रह्म और यज्ञ। अन्यत्र यज्ञ के स्थान पर कर्म शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। ब्रह्म शब्द का अर्थ है निरन्तर वर्धमान मूल तत्त्व जो समस्त सृष्टि में परिलक्षित हो रहा है। शाश्वत सत्य के वृहत् रूप को ही लक्ष्य वनाना है; परन्तु उसका जो तात्कालिक रूप (ऋतम्) ग्रहण किया जाय वह 'उग्र' हो; क्योंकि तनिक भी ढिलाई राष्ट्र के लिए अहितकार सिद्ध होगी। उदाहरण के लिए विश्वप्रेम 'वृहत् सत्य' है, परन्तु जव चीनी आक्रमण हुआ था, तव विश्व प्रेम का तात्कालिक रूप (ऋतम्) इसी में निहित था कि आक्रामकों पर घातक प्रहार करके राष्ट्र और राष्ट्रीय हितों की रक्षा की जाय।

आज भी इन छह तत्त्वों को अपनाकर ही हम अपनी राष्ट्रभूमि की धारणा कर सकते हैं। तभी हमें राष्ट्रभूमि की वह 'गंध' मिल सकेगी जो प्रस्तुत सूक्त के अनुसार मातृभूमि के कण-कण में समाई हुई है। इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय हैं कि यह गंध 'कन्या' और 'कमल' में प्रविष्ट होकर उन्हें सर्वप्रिय वना देती है। क्या ही अच्छा हो कि आज हमारे जन-जन में यही गंध प्रवेश करके हमारे आपसी ईर्ष्या-द्वेष को समाप्त करके स्नेहसिक्त 'वातावरण' द्वारा भेद-भाव रहित समाज की स्थापन कर दे और हम सव कह उठें—"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"।

—(डॉ०) फतहसिंह
भू. पू. निदेशक, प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान,
जोधपुर

निवेदन

वेदज्ञ नहीं हूँ। स्वाध्याय के मार्ग में अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त के कुछ मंत्रों का भाष्य पढ़कर सहसा मैथिली-शरण गुप्त की 'मातृभूमि' कविता स्मृति में कौंध गई। वैष्णव कवि गुप्त जी ने मातृभूमि को सर्वेश की सगुण मूर्ति के रूप में स्थापित कर देश भक्ति की जो लहर बहाई, वह अनुपम थी। भावात्मक, बौद्धिक एवं भौतिक सभी रूपों में भारतभूमि को देवत्व प्रदान करने वाली वे पंक्तियाँ अविस्मरणीय हैं।

अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त की आधार भूमि उससे कहीं विशाल है। पृथिवी के लिए मातृभूमि की कल्पना नई नहीं है। वह वैदिक काल से चली आ रही है। इस सूक्त में मातृभूमि की विराटता, उसके धारण करने योग्य बनने के गुण, उसके विशाल वन, अगम्य पर्वत, अगणित नदियाँ, जलाशय, औषधियाँ, खनिज पदार्थ आदि का वर्णन अत्यन्त हृदयग्राही है। विविधता में एकता का दिग्दर्शन भी इन मंत्रों में है यहाँ विविध बोलियाँ बोलने वाले जन परिवार के समान रहते हैं। यहाँ षट् ऋतुओं का विविध दृश्य युत अद्भुत क्रम है। वह अन्न देकर हमारा पोषण करती है और शत्रु को पराजित करने का हौंसला देती है।

इच्छा हुई कि इन मंत्रों को अपने शब्दों में बाँध लूँ, स्वाध्याय के लिए इन्हें अपनी स्मृति में सदैव के लिए अंकित कर लूँ। इसी इच्छा का परिणाम यह 'मातृभूमि' है।

मैंने निवेदन किया है कि मैं वेदज्ञ नहीं हूँ। वेद मंत्रों का भाष्य पढ़कर तथा मूल मंत्रों का अवलोकन कर यह रूपान्तर किया है वैदिक शब्दों की मूल भावना तक पहुँचना तथा उसे हिन्दी में व्यक्त करना मेरे सामर्थ्य में नहीं है। इसलिए वैदिक विद्वान् इस रूपान्तर में अनेक त्रुटियाँ पा सकते हैं, पायेंगे। पर मातृभूमि के प्रति मेरी श्रद्धा-भावना का ही इसमें

समावेश हुआ है, ये केवल आधार मात्र हैं, ऐसा विद्वज्जन समझेंगे तो मैं अपना प्रयास सफल समझूंगा।

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर तथा क्षेमकरण दास त्रिवेदी के अथर्ववेद-भाष्य ने इन मंत्रों का रूपान्तर करने में मेरी सहायता की है। मैं इन दोनों विद्वानों के चरणों में नतमस्तक हूँ।

आचार्य राजबली पांडेय के "अथर्ववेद में मातृभूमि की कल्पना" (नागरी प्रचारिणी पत्रिका-'आचार्य चन्द्रबली पांडेय विशेषांक') लेखसे मुझे प्रेरणा मिली। मैं आभारी हुआ।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के एक भाषण में इसी सूक्त के उक्त मंत्र का गौरव पूर्ण उल्लेख देखकर मेरी इच्छा को बल मिला। मैं कृतज्ञ हूँ।

परिवारों के वैदिकीकरण के उद्घोषक आचार्य ईश्वरीप्रसाद जी 'प्रेम' (प्रेम भिक्षु जी) तथा आर्यवीर दल के संचालक बाल दिवाकर 'हंस' जी ने रूपान्तर को पढ़-सुनकर इसे प्रकाशित करने की प्रेरणा दी और अर्चना प्रकाशन के संचालक डॉ. बद्रीप्रसाद जी पचोली ने इसे प्रकाशित करने का कष्ट किया। ये सब मेरी श्रद्धा के पात्र हैं।

वैदिक विद्वान् श्रद्धेय डॉ. फतहसिंह जी ने इसे पढ़कर आवश्यक सुझाव दिये और भूमिका लिखी। मैं उन्हें धन्यवाद देने की औपचारिकता कैसे करूं? वे साहित्य-क्षेत्र में सदैव मेरे मार्गदर्शक रहे हैं।

अन्त में अपनी अक्षमता के साथ इस दुस्साहसपूर्ण कार्य के लिए सभी सुधी पाठकों से क्षमायाचना करता हूँ और आशा करता हूँ कि वे त्रुटियों की उपेक्षा कर भावनात्मक दृष्टि से इसे ग्रहण करेंगे।

—हरि

ओ३म्

मातृभूमि

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ।१।

बृहत् सत्य, ऋत उग्र, ज्ञान, तप, दीक्षा और यज्ञ-वर्द्धन—
धारण करते पृथिवी को, वह करती हमें सदा धारण ।
भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान में रक्षक थी, है, होगी जो,
विस्तृत भूपति करे हमें वह मातृभूमि मंगलमय हो ।।

असंबाध बध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
नानावीर्याओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ।

पूर्ण ऐक्य जिसके पुत्रों में ऊँच-नीच सब एक समान,
द्रोह-रहित उर जहाँ मानवों के, सम हैं सबके मन-प्राण ।
नाना औषधि फल मेवादिक बलदाता जो करती दान,
मातृभूमि वह अखिल विश्व में यश फैलावे दे सम्मान ।।

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ।।

जिस पर नदियां विविध जलाशय और सिंधु लहराते हैं,
जिस पर विस्तृत खेत अन्न-परिपूरित मन को भाते हैं ।
जिस पर श्वासों-प्रश्वासों का चेतन ने पाया वरदान;
मातृभूमि वह सदा अन्न-जल दुग्ध हमें शुचि करे प्रदान ।।

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ।४।

जिसमें चारों ओर खेत ही खेत दिखाई देते हैं,
जिसमें अगणित अन्न पुष्टिकर प्राणिमात्र को सेते हैं।
पोषण करती नानाविधि जो सचर-अचर का एक समान,
मातृभूमि वह हमें अन्न औ गोधन करती रहे प्रदान ।।

यस्या पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ।५।

पूर्वकाल में हुए जहां कर्त्तव्यनिष्ठ पूर्वज बलवान;
जहां सुरों ने असुर जनों को किया पराजित हतप्रभ म्लान।
जो है गोधन, अश्व, अन्न-भण्डार-रक्षिका, सब धन-खान,
मातृभूमि वह तेज, शौर्य ऐश्वर्य पराक्रम करे प्रदान ।।

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।

वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा नो दधातु ।६।

सबकी आश्रयदात्री, नाना धन-सम्पति से जो भरपूर,
सबका दृढ़ आधार, स्वर्णगर्भा, निवासिनी दुख से दूर ।
विश्वपोषिका, तेजदायिनी जिस पर मेघ करें जलदान,
मातृभूमि वह अमित तेज-बल-धन हम सबको करे प्रदान ।।

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ।७।

धनी बली विद्वान् सदा जाग्रत जिसकी रक्षा के अर्थ,
जो है सर्वदायिनी धरतीमाता करती हमें समर्थ ।
उससे पाते रहें सदा हम प्रिय मधु ज्ञान और विज्ञान,
तथा बढ़ाती रहे स्वपुत्रों का वह साहस तेज महान ।।

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः ।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः ।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ।८।

जो जल रूप अवस्थित थी प्रारम्भ काल में जलनिधि-मध्य,
महामनीषी पूर्वज जन से सेवित होती रही सुदिव्य ।
परम व्योम जिसका उर सत्यामृत से पूरित रहा समान,
मातृभूमि वह श्रेष्ठ राष्ट्र में दान करे बल तेज महान ।।

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ।९।

जिस पर आप्त पुरुष सेवा को तत्पर रहते हैं दिनरात,
जल-सम रहित प्रमाद, एक सम, सेवक बन बहते अवदात ।
मातृभूमि वह अगणित धारा दुग्ध अन्न की करे प्रदान,
और तेज बल बढ़ा स्वपुत्रों का फैलावे सुयश-वितान ।।

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ।१०।

दिवस निशा ने जिसको नापा, जहाँ सूर्य ने पाँव दिया,
महा मनीषी इन्द्र वीर ने शत्रुरहित है जिसे किया ।
मातृभूमि वह सबके हित दे हमें अन्न-जल_ दूध सदा,
जैसे माता निज सुत के हित होती स्नेहिल दुग्धप्रदा ।।

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु ।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ।११।

मातृभूमि हे, तेरे गिरि-पर्वत हिमवान् अरण्य सुरम्य,
सुखदायी हों हमें सर्वदा रहें हमारे लिए सुगम्य ।
तू उर्वर, कृषियोग्य, भरणकर्त्री, वीरों से रक्षित है,
मैं अजेय, अक्षत अप्रतिहत स्वामी रहूं अभीप्सित है ।।

यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः ।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ।१२।

मैं हूँ तेरा पुत्र और तू मेरी मां गरिमामय भव्य,
तेरे तन के मध्य नाभि से निःसृत होती ऊर्जा दिव्य ।
माँ, मुझको दे सब पदार्थ, कर शुद्ध मुझे सब भाँति नितान्त;
और पिता पर्जन्य अमृत वर्षा से पूर्ण करे निर्भ्रान्त ।।

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः ।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् ।
सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना ।१३।

जिस पर सर्व कर्मपटु वेदी बना यज्ञ की सुघर ललाम,
संगति-करण, देवपूजा औ' दान-भाव भरते निष्काम ।
पूर्णाहुति से पूर्व शुभ्र औ' उच्च विजय के स्तम्भ पुनीत,
गाड़े जाते, वर्द्धमान वह भूमि बढ़ावे हमें अभीत ।।

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो बधेन ।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वं कृत्वरि ।१४।

द्वेष करे हमसे, जो सेना ले हम पर कर दें आक्रमण,
अस्त्र शस्त्र या कुत्सित मन से करे हमारी शान्ति हरण ।
श्रेष्ठ जनों की हे सहायिका, मातृभूमि तू दे वरदान,
नष्ट करें हम उसे, राष्ट्र के हित का रखें सर्वदा ध्यान ।।

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ।
तवेमे पृथिवि पंचमानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो
रश्मिभिरातनोति ।१५।

तुझ से ही उत्पन्न मर्त्य विचरण करते तुझ पर सानन्द,
द्विपदों और चतुष्पादों को देती शरण तु ही सुखकन्द ।
बालारुण अपनी किरणों से करता अमृत ज्योति-विस्तार,
पाँच तत्त्व के पुतले हम सब माँ, तेरे हैं सभी प्रकार ।।

ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ।१६।

मातृभूमि, मेरो वाणी में भर माधुर्य कि सर्व प्रजा-,
हिलमिल कर भरपूर करे हमको, हों सब अनुकूल सदा ।

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनुचरेम विश्वहा ।१७।

मातृभूमि, तू अगणित ओषधियों की जननी,
धर्म - नियम पर टिकी हुई सुखदा जगभरणी ।
तू दृढ़ता से विस्तृत है इस जगती - तल पर,
सेवा करें सर्वदा म सब कुछ अर्पण कर ।

महत् सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे ।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् ।
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ।१८।

तू महान् है महा-वासिका हिलना-डुलना, वेग महान्,
महा इंद्र तेरी रक्षा का अप्रमाद हो रखते ध्यान ।
ऐसी मेरी मातृभूमि, तू कर दे उज्ज्वल स्वर्ण समान,
मुझसे कोई द्वेष करे नहिं, करे नहीं कोई अपमान ।

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ।१९।
अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम् ।
अग्निम् मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ।२०।
अग्निवासाः पृथिव्यसितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ।२१।

ओषधियों में, जल में, भू में, पत्थर में जो अग्नि व्याप्त है,
पुरुषों के अन्तःशरीर में, गौवों-अश्वों में सुप्राप्त है ।
रवि से आकर भू पर तपता, अन्तरिक्ष विस्तृत निवास है,
मानव जिसे प्रज्वलित करता जो घृतप्रिय सब को सुपास है,
ऐसे अग्निवस्त्रवाली मां, बंधन रहित कर्म की दात्री,—
मुझको तेजस्वी, उत्साही करे सदा श्रद्धा की पात्री ।

)

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् ।
भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः ।
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ।२२।

देवों के हित जहाँ सुसंस्कृत हवि से यज्ञ किये जाते,
जहां मनुज निज अन्न-धारणा-बल से सतत जिये जाते ।
मातृभूमि वह मेरी मुझको प्राण - आयु का दान करे,
दीर्घ आयु से युक्त स्तुत्य बन जीऊँ यह विश्वास भरे ।

यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः ।
यं गंधर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु
मा नो द्विक्षत कश्चन ।२३।

मातृभूमि, तुझसे प्रसूत यह गंध जिसे धारण करते—
ओषधियाँ, जल-अन्न, प्राणियों का पोषण कर श्रम हरते ।
जिसे भोगते जल - थल - नभ वासी अनन्त आनन्द भरे,
उसी गंध से मुझे विभवशाली कर, कोई न वैर करे ।

यस्ते गंधः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे।
अमर्त्याः पृथिवि गंधमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु
मा नो द्विक्षत कश्चन ।२४।

कमल और पोषक द्रव्यों में तेरा गंध समाहित जो,
जिसे समेटा सूर्य-रश्मियों ने सब में अति व्यापित जो.
जिसे अमर देवों ने संचित कर जगती के दुःख हरे,
धरती माँ, वह गंध करे समृद्ध, न कोई वैर करे।

यस्ते गंधः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः।
यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु।
कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्माँ अपि सं सृज
मा नो द्विक्षत कश्चन ।२५।

माँ, जो तेरा गंध स्त्री-पुरुषों में कान्ति, विभव भरता,
वेगवान् अश्वों हरिणों में और गजों में गति धरता,
कन्या आदि ज्योतिचक्रों में महा विलक्षण तेज भरे,
उसी तेज से अन्वित कर माँ, कोई न हमसे वैर करे।

शिलाभूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता ।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ।२६।

पत्थर, शिलाखण्ड, रजकण से जो निर्मित है,
छह सुगुणों[1] के धारण से ही जो रक्षित हैं,
स्वर्ण - रजत अक्षय खानें जिसमें गर्भित हैं,
शत - शत नमन मातृभू को सादर अर्पित हैं।

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ।२७।

जिसमें नाना वृक्ष वनस्पतियां सुनाम हैं,
सदा सर्वदा स्थिर रहतीं नयनाभिराम हैं ।
सबकी की धात्री जो हमसे है सदा सुरक्षित,
वन्दनीय उस मातृभूमि का सादर स्वागत ।

---

१. प्रथम मंत्र में वर्णित गुण

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ।२८।

चलते - फिरते और दौड़ते इस धरती पर,
बैठे, खड़े और उठने को होकर तत्पर ।
दाएँ - बाएँ आगे - पीछे निज पाँवों से,
दें न किसी को कष्ट, करें हर्षित कामों से ।

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ।२९।

क्षमामयी तू खोज - योग्य विस्तृत भू - माता,
ब्रह्म - ज्ञान, धन, अन्न आदि से शाश्वत नाता ।
यही प्रार्थना माँ, बलकारक शुचि घृतान्न दो,
होकर पुष्ट निवास करें निर्भय स्वतन्त्र हो ॥

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्म ।
पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि ।३०।

मातृभूमि, निर्मल जल तेरा मिले निरन्तर—
हो पवित्र बल - तेज - युक्त तन - मन सेवन कर ।
दुष्ट शत्रु अप्रियता का यदि यत्न करे तो—
घोर दण्ड पाकर हमसे वह नष्ट - भ्रष्ट हो ।

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद्
याश्च पश्चात् ।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने
शिश्रियाणः ।३१।

माँ, ये तेरी पूर्व और पश्चिम प्रदिशाएँ,
उत्तर - दक्षिण, ऊपर - नीचे, दाएँ - बाएँ—
विचरण करते मुझे सभी वे सुखदायी हों;
गिर न पड़ूँ संसार - मध्य वे बलदायी हों ।

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो
यावया वधम् ।३२।

मातृभूमि, ना तो पीछें से, नहिं सम्मुख से—
और न नीचे से, ऊपर से हमें हटाओ ।
कल्याणी हो सदा हमारे लिए मातृभू—
दुष्टों को दे दण्ड मृत्यु की भीति भगाओ ।

यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ।३३।

जब तक नभ में सूर्य दीप्त आनन्द - प्रदायक,
दर्शन तेरी नाना छवि के करूं निरंतर ।
तब तक मेरे नेत्र और इन्द्रियां इतर सब,
क्षीण न हों, हों शक्ति-युक्त ये उत्तर - उत्तर ।

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम्।
उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत् पृष्टीभिरधिशेमहे।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ।३४।

जब हम तुझ पर सो करवट लें दायें - बायें,
या जब चित हो पीठ सहारे से सो जायें।
तब हे भूमि! शयनदात्री सब प्राणिवृन्द को,
हमें कष्ट हो रंच न, हम तुझ पर सुख पावें।

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम ।३५।

विविध धातुओं भरी भूमि! मैं कुछ पाने को,
खनन करूं तो प्राप्त मुझे वह अनायास हो।
माँ! तेरे मर्मस्थल को औ' सरस हृदय को,
किंचित् हानि न पहुँचाऊँ मेरा प्रयास हो।

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ।३६।

हे विराट् भूजननी, ! तेरे ग्रीष्म, सुवर्षा,
शरद और हेमन्त, शिशिर, वासंती मौसम ।
जो अनन्त से चले आ रहे दिवस - निशा हैं,
वे सब काल प्रदान करें पूर्णता मनोरम ।।

याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्वन्तः ।
परा दस्यून् ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् ।
शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ।३७।

विविध प्रकार खोजनीया जो गतिशीला है सरल निरन्तर,
जिसमें विद्यमान वह अगिनी प्राणिमात्र के है जो भीतर ।
दुष्ट आततायी को दूर हटा रिपु का जो करती वारण,
शक्ति और बल हेतु वीरभोग्या भू को हम करते धारण ।।

यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते ।
ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः ।
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ।३८।

जिस पर अन्नागार सभास्थल, जहाँ यज्ञ के यूप खड़े,
जिस पर ऋक, यजु साम मंत्र से अर्चन करते विज्ञ बड़े ।
जिस पर ऋत्विज यज्ञ कर्म कर, यजमानों के मंगल को,
उन्हें पिलाते दिव्य सोमरस जिससे बाधा-व्याधि न हो ।

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषियो गा उदानृचुः ।
सप्त सत्त्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ।३९।
सा नो भूमिरादिशतु यद्धनं कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्रं एतु पुरोगवः ।४०।

जिस पर ज्ञानी औ' अतीत - निर्माता ऋषिगण
सज्जन - रक्षक, विज्ञ, साधु कर्मठ पुनीतमन
यज्ञ और तप सहित सप्त इंद्रिय के द्वारा—
करते हैं सत्कार वेदवाणी का सज्जन ।
मेरी मातृभूमि वह हमको दे इच्छित धन,
पीछे - पीछे विभव चले, आगे सुवीर जन ।

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः।

युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्य वदति दुंदुभिः।
सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ।४१।

जिस पर विविध बोलियों वाले मनुज नाचते-गाते हैं,
जिस पर वीर युद्ध करते गर्जित दुंदुभी बजाते हैं।
मातृभूमि वह स्वतंत्र हो अरियों को दूर भगा देवे,
शत्रु रहित कर दे मुझको, पावन सद्बुद्धि जगा देवे।

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पंच कृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ।४२।

जिस पर चावल, अन्न और जौ पैदा होतें,
जिस पर पंच तत्त्व निर्मित नर सदा विचरते।
जो वर्षा की स्नेहभाजिनी, मेघ - पालिता;
उस पवित्र भू माता का हम वन्दन करते।।

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।

जापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ।४३।

कुशल शिल्पियों से निर्मित हैं जिसके नगर मनोहर,
विविध कर्म करते पटुता से देवोपम नर जिस पर।
परमपिता उस सर्वधारिणी भू को दिशा - दिशा में,
करे हमारे लिए सदा रमणीय और मंगलकर।

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
सूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ।४४।

जिसके गर्भदेश में नाना निधियां संचित,
धन, मणि, स्वर्ण प्रदान करे; हों कभी न वंचित।
धनदा देवी भूमि हमें बहु वैभव देकर,
हो प्रसन्नमन पोषण करती रहे निरंतर।

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्

सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ।४५

विविध बोलियों, विविध विचारों वाले जनगण,
विविध धर्म-कर्मा जिस पर रहते कुटुम्ब-सम ।
दे सहस्र धारा धन वह धरती मां पतिपल,
जैसे धेनु दूध की धारा देती अविचल ।

यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हैमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये
क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोप
सृपद् यच्छिवं तेन नो मृड ।४६

डंक मार कर प्यास जगाने वाले बिच्छू-सांप,
शीतकाल में व्याकुल हो सोते विवरों में कांप ।
वर्षा में सानन्द रेंगते तुझ पर जो कृमि-कीट,
हम पर रेंगे नहीं, सुखी कर उनसे हमें अभीत ।

ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे।
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं
यच्छिवं तेन नो मृड ।४७।

विविध मार्ग मानव के चलने योग्य तुम्हारे ऊपर,
नाना पथ रथ-छकड़े चलते जिन पर अतिशय सुखकर।
भले - बुरे दोनों चलते, जो तस्कर, शत्रु - रहित पथ—
हम उनको जीतें, मंगल से हमको सतत सुखी कर।

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय।४८।

धारण और गुरुत्व शक्ति को धारण करती,
भले - बुरे कुल के समूह छाती पर सहती,
सजल मेघ के साथ निहित जो पृथिवी सुन्दर।
सुखद रश्मिमय सूर्य उसे करता है मनहर।

ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः
पुरुषादश्चरन्ति । उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां
रक्षो अप बाधयास्मत् ।४६।

भूमे ! हिरण आदि वन - पशु हितकारी होवें,
नर-भक्षक भेड़िये व्याघ्र जो क्रूर जानवर ।
वन बिलाव, मृगराज, दुष्ट गति रीछ - रीछनी,
निडर घूमते, उन्हें हटावें मार - भगाकर ।

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ।५०।

दुखदायी गन्धर्व; विरोधी अप्सर जो जन;
कृपण, नीच औ' दुराचरण में लीन सर्वदा ।
राक्षस और पिशाच मांस - भक्षक पीडक जो,
मातृभूमि ! तू उन्हें दूर रख हमसे बहुधा ।

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् ।
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ।५१।

जिस पर द्विपद पक्षिगण कोयल कौवे हंस गरुड़ उड़ते,
जिस पर नभगामी प्रचण्ड-गति झंझा के झोंके चलते ।
धूल उड़ाते मेघ बनाते वृक्षों को चंचल करते,
जहाँ पवन के गति - अनुसारी सुप्रकाश - सोते वहते ।।

यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि ।
वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये
धामनिधामनि ।५२।

जिस पर अरुण वर्ण का दिन औ' कृष्ण वर्ण रातें होतीं,
संध्या कुकुंम बरसाती नित उषा सदा मोती बोती ।
जिसे मेघ वर्षा - जल से समयानुकूल सिंचित करते,
मातृभूमि वह धाम - धाम रमणीय करे, सब दुख हर दे ।।

द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः ।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः ।५३।

यह मेरा आकाश और यह पृथिवी मेरी,
मेरा अन्तरिक्ष यह विस्तृत देता फेरी ।
अग्नि सूर्य जल और अन्य जो हैं देवोपम,
देते मुझे सर्वदा मेधा - बल सर्वोत्तम ।।

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभिषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहि ।५४।

सहनशक्ति से युक्त बली मैं हूँ धरती पर,
मेरा यश औ' नाम अधिक ऊँचा जगती पर ।
मैं विजयी ही नहीं सर्व - विजयी हूँ उत्तम,
करता प्रदिशा - दिशा पराजित अपने बल पर ।।

अदो यद्देवि प्रथमाना पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् ।
आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ।५५।

पूर्वकाल में देवों ने तुझको विशाल जब माना,
वर्णन कर तेरा महत्त्व सब जगती पर है ताना।
प्राप्त हुआ ऐश्वर्य अनूठा तुझको तब भू माता,
तूने किया समर्थ चतुर्दिक् सब को सौख्य-प्रदाता ।।

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ।५६।

माँ भू तुझ पर जो बन ग्राम सभायें सारी,
तथा समितियाँ और युद्ध होते जो भारी।
उनमें तेरे सुत हम तेरे लिए सर्वदा,
आदर-युक्त मधुर भाषण कर हरें आपदा ।।

अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान् य आक्षियन् पृथिवीं यादजायत। मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ।५७।

हर्षदायिनी अग्रगामिनी जगत - रक्षिका सुखकर,
भव्य वनस्पति सोम आदि ओषधियाँ जिसके भीतर।
जब से जन्म लिया इसने, जिनने है इसे सताया,
अश्व उड़ाता धूलि जिस तरह वैसे उन्हें उड़ाया।

यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ।५८।

मैं जो कुछ बोलता मधुरता - युक्त बोलता,
प्रेम - दृष्टि से सदा देखता प्रीति घोलता।
सब का प्रिय तेजस्वी अतिशय वेगवान् हूँ,
घातक अरि को नष्ट भ्रष्ट कर दूँ महान् हूँ।।

शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती ।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ।५९।

शान्तिमयी सुखदा सुगंधयुत अमृतस्तना जो,
पयस्वती रसयुक्त विशाला महामना जो ।
वह मेरी भू मुझे दूध औ' अन्न सदा दे,
अर्पण कर दूँ सब कुछ मैं उसकी आज्ञा से ।।

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम् ।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहां यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भ्य ।६०।

जल से पूरित अन्तरिक्ष में जिस पृथिवी को,
सर्व कर्म पटु दिव्य जनों ने खोजा मन से ।
भोजन का भण्डार भूमि के भीतर जो था,
प्रकट हुआ वह जीवों के हित मां के स्तन से ।।

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना ।
यत् त ऊनं तत् त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ।६१।

मातृभूमि, तू अति उपजाऊ कामधेनु है,
तू प्रख्यात अखण्डव्रता देवों की माता।
जो कुछ तुझ में न्यून उसे पूरा कर दे वह,
सत्य - नियामक प्रथम प्रजापति विश्व - विधाता ।।

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूता ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ।६२।

मातृभूमि, तव गोदी में नीरोग रहें हम,
राजरोग से रहित जन्म लें तेरे प्रसुवन ।
दीर्घ - आयु हों, हम सब उत्तम ज्ञानी बनकर,
तेरे हित तत्पर हों बलि देने को तन - मन ।।

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ।६३।

माँ, मुझको तू बना भद्रतायुत सुप्रतिष्ठित,
काव्यमयी माँ कल्याणी हे सदा भलाकर ।
तू प्रकाश - संगिनी मुझे श्री और भूति दे,
ज्ञान और विज्ञान युक्त कर हृदय भक्ति भर ।।
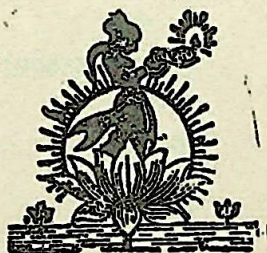
शुद्धि-पत्र

पृ० संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	१२	अहितकार	अहितकर
७	१	यस्यामत्रं	यस्यामन्नं
		संबभूवु	सं बभूवुः
७	७	यस्या	यस्यां
८	२	नो दधातु	द्रविणं नो दधातु
९	१	यार्णवऽधि	यार्णवेऽधि
९	१	आसीद् यां	आसीद्यां
१३	६	म	हम
१६	१	दध्म	दध्मः
	६	महयं	—मह्यं
२२	२	यस्य	यस्यां
२३	७	वृश्चिकस्तृष्टक्ष्श्मा	वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा
	८	सर्पन्माप	सर्पन्मोप
२४	७	विमृावरी	विमृग्वरी
२६	४	सभ्रास्थल	सभास्थल
	५	ऋक	ऋक्
	८	ऋषियो	ऋषयो